पुराणों में वन एवं वन्य–जीव संरक्षण के प्रयास

*डॉ. भास्कर शर्मा

यश्चैकमपि राजेन्द्र वृक्षं संस्थापयेन्नरः।

सोऽपि स्वर्गे वसेद्राजन्यावदिन्द्रायुतत्रयम्।। [1]

मानव तथा प्राकृतिक परिवेश में सदा सन्तुलन बने रहने में ही मानव मंगल निहित है। इसी भावना से पुराण मानव को सभी प्रकार के पशु–पक्षी, कीट, सरीसृप एवं वृक्षों (वन) के प्रति पुत्रवत् व्यवहार करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं। मत्स्यपुराण में तो यहाँ तक कहा गया है कि दस कुएँ एक वापी के समान, दस वापी एक सरोवर के समान हैं, दस सरोवर एक पुत्र और दस पुत्र एक वृक्ष के समान हैं। पुत्र की भांति वृक्षों का संरक्षण पुराणों में स्तुत्य है, क्योंकि वृक्षों का संरक्षण पुत्रवत् गति प्रदान करने वाला माना गया है–

दशकूप समावापी दशवापी समोह्रदः।

दशह्रदः समः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः।। [2]

वृक्षों को पुत्रतुल्य मानने की संगठित भावना से ओतप्रोत इस उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति अर्थात् वन (वृक्ष) संरक्षण के प्रयासों की परिपाटी पुराणों में सशक्त रूप में विद्यमान थी।

पर्यावरणीय शब्दों की श्रृँखला के माध्यम से पर्वत, जंगल, वनस्पति, उद्यान, कानन व वानस्पत्य को सुरक्षित रखने का निर्देश पुराणों में दिया गया है –

अद्रिगोत्रगिरिग्रावा गहनं काननं वनम्।

आरामः स्यादुपवनं कृत्रिमं वनमेव यत्।। [3]

ओषध्यः फलपाकान्ताः पलाशी द्रुद्रुमागमाः।

स्थाणुर्वा ना ध्रुवः शङ्कुः प्रफुल्लोत्फुल्लसंस्फुटाः।।

वैकङ्कतः स्त्रुवावृक्षो ग्रन्थिलो व्याघ्रपादपि।

तिन्दुकः स्फूर्जकः कालो नादेयी भूमिजम्बुकाः।। [4]

वनों एवं वृक्षों को संरक्षित रखने के विविध प्रयास अग्नि, मत्स्य एवं शिवपुराण में उपलब्ध होते हैं। जिसका अन्वेषण इस शोध–प्रबन्ध के प्रस्तुत अध्याय का प्रधान विषय है। वन वृक्षों का ही सघन रूप हैं अतः सर्वप्रथम वृक्ष संरक्षण पर ध्यान देना आवश्यक है।

पुराणों में वन (वृक्ष) – संरक्षण के प्रयास :

वृक्षों को किस नक्षत्र में आरोपित करना चाहिए ? किस विधि से वृक्षों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए ? वृक्षों में रोगों के शमनार्थ किस प्रकार का उपचार करना चाहिए ? वृक्षों का धार्मिक एवं आर्थिक महत्व क्या है ? पर्यावरण संरक्षण में

वृक्षों की भूमिका क्या है ? इस सबका विवरण पुराणों में अनेक दृष्टान्तों के माध्यम से जाना जा सकता है। अग्नि पुराण में वृक्ष प्रतिष्ठाविधि को भुक्ति तथा मुक्ति प्रदान करने वाली कहा गया है। वृक्ष की प्रतिष्ठा से पूर्व अंकुर को आरोपित करने का वर्णन भी पुराणों के माध्यम से जानना अत्यावश्यक है –

अंकुरारोपण विधि – जिस प्रकार किसी भी वृक्ष अथवा गुल्म को आरोपित करने हेतु भूमि का उचित चयन एवं परीक्षण करना अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है उसी प्रकार पुराणों में अंकुर आरोपण हेतु विशिष्ट पात्रों का जैसे – शराव, घटिका, पाली इत्यादि का चयन उपयुक्त माना गया है। अंकुर को आरोपित करने हेतु यव, धान, तिल, गेहूँ, पीली सरसों, कुल्थी, उड़द एवं निष्पाव को पछोरकर (शुद्धकर) धो लें, इसके पश्चात् उपर्युक्त पात्रों में गीली मिट्टी रखकर उन्हें आरोपित करना चाहिए :–

शरावघटिका पाली स्वाङ्कुरारोहणे हिता,

यवांशालींस्तिलान्मुद्गान्गोधूममान्सितसर्षपान्

कुलत्थञ्चमाषनिष्पावान्क्षालयित्वा तु वापयेत्।।[5]

वृक्षों के लगाने हेतु उपयुक्त नक्षत्र क्या हैं ? इसका स्पष्ट उल्लेख अग्निपुराण के निम्न श्लोकांश द्वारा दृष्टव्य है–

सप्तम्यां वा त्रयोदश्यां दमनं संहिताणुभिः

संपूज्य बोधयेद्वृक्षं भववाक्येन मन्त्रवित्। [6]

अर्थात् सप्तमी अथवा त्रयोदशी के दिन संहिता मन्त्रों द्वारा दमन की पूजा करके मन्त्रज्ञ व्यक्ति द्वारा शिव की आज्ञा से वृक्ष को लगाना चाहिए।

पुराणकालीन समाज में वृक्षों के अंकुरण से लेकर उनके रक्षण, सिंचन पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था–

वृक्षोत्सव अथवा वृक्ष–प्रतिष्ठा विधि – वृक्ष–वनस्पति, पर्यावरण सरं क्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं अतः मत्स्यपुराण में वृक्षों के संवर्द्धन एवं संरक्षण के लिए उनका विशिष्ट विधि से रोपण एवं संस्कार किये जाने का उल्लेख मिलता है। वृक्षोत्सव के अन्तर्गत निर्देश है कि वृक्षों को सभी प्रकार की औषधियों से मिले हुए जल द्वारा सिंचित कर उन्हें अवीर, गुलाल आदि मांगलिक द्रव्यों से अलंकृत करना चाहिए। वृक्षों को मालाएँ पहनाकर वस्त्रों द्वारा चारों ओर से ढक देना आवश्यक है।

सूच्या सौवर्णया कार्यं सर्वेषां कर्णवेधनम्

अंजनश्चापि दातव्यं तद्वद्हेमशकालकया।। [7]

तत्पश्चात् सुवर्ण की बनी हुई सूची द्वारा सभी वृक्षों का कर्णछेदन करना चाहिए। उसी प्रकार सुवर्ण निर्मित सलाई से उन्हें अंजन देना चाहिए ।

सात व आठ सुवर्ण अथवा चांदी के फल बनवायें, और सभी वृक्षों को वेदी पर स्थापित करके इन फलों को भी वहाँ रख दें। इस कार्य में गुग्गुल की धूप श्रेष्ठ रहती है। फिर तांबे के बने हुए पात्रों को ऊपर स्थापित कर, वस्त्र, गन्ध तथा चन्दनादि से अलंकृत कर कलश को सात प्रकार के अन्नों के ऊपर रखकर सभी वृक्षों के नीचे स्थापित करें और सभी कलशों के अन्दर सुवर्ण डालें। द्विजाति विद्वानों को यथाशक्ति, लोकवित्त, लोकपालों तथा विशेषकर इन्द्र आदि देवताओं तथा वनस्पति के लिए आहुति प्रदान करनी चाहिए। तदनन्तर श्वेत रंग के वस्त्रों से युक्त, सुवर्ण के

आभूषणों से सुशोभित, कांसे के दोहन पात्र से संयुक्त, सोने से मंडे हुए सींगों की दूध देने वाली एक गाय का, जिसका मुखभाग उत्तर दिशा की ओर हो, उन्हीं वृक्षों के मध्य भाग में दान करें। तत्पश्चात् अभिषेचन करें, मन्त्र से वाजन तथा मांगलिक गीतों के मध्य में ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के मन्त्रों से तथा वरूण की स्तुतियों का पाठ करते हुए उन्हीं कुम्भों द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मण को स्नान कराना चाहिए। स्नान कर लेने के पश्चात् यजमान सावधान चित्त हो श्वेतरंग का वस्त्र पहन कर यथाशक्ति गौओं द्वारा उन पुरोहितों की पूजा करें और कटक के सहित सुवर्ण निर्मित सूत्रों, अंगूठियों, वस्त्रों, खड़ा ऊँ तथा शय्या की सभी सामग्रियों का दान करें। अगले चार दिन तक दूध के साथ भोजन करायें। सरसों, जौ तथा काले तिल से हवन करें। इस हवन में पलाश की समिधा प्रशंसित मानी गई है। हवन की समाप्ति पर चौथे दिन उत्सव करें। उस उत्सव में भी अपनी शक्ति के अनुकूल दक्षिणा दें। जो–जो वस्तुएँ अपने आप को पसन्द हों, उन्हें भी मत्सर रहित होकर दान करना चाहिए। सभी वस्तुओं को देते समय आचार्य को द्विगुणित वस्तुओं का दान करना चाहिए। इस प्रकार इस वृक्षोत्सव विधि के अनुसार जो बुद्धिमान पुरूष वृक्षोत्सव करता है वह सभी इच्छाओं को प्राप्त कर लेता है एवं इसके प्रभाव से अमर फल को भी प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त इस विधि के अन्तर्गत अग्निपुराण में ''वृक्षप्रतिष्ठाविधि''[8] का उल्लेख है।

वृक्षों का दैवीय संरक्षण :

मत्स्यपुराणानुसार वृक्षों का संरक्षण स्वयं भगवान करते हैं –

तं वटं रक्षति सदा शूलपाणिर्महेश्वरः

स्थानं रक्षन्ति वै दैवाः सर्वपापहरं शुभम्।। [9]

परमेश्वर द्वारा स्वयं प्रकृति के संरक्षण के विषय में यह श्लोक पौराणिक ग्रन्थों की सचेष्टता को अभिव्यक्त करता है। परमेश्वर इस सृष्टि की रचना, पोषण एवं संहार करते हैं, प्रत्येक वस्तु में उसका निवास है अतः हमें प्रत्येक वस्तु को संरक्षित रखना चाहिए। भगवान शंकर स्वयं अक्षयवट में निवास करते हैं अतः वृक्षों को विशेष संरक्षित रखना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है–

माहेश्वरो वटी भूत्वा तिष्ठते परमेश्वरः।।[10]

पुराणों में वृक्षों के संरक्षण के प्रति दैवीय भावना स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है।

नक्षत्रों के अनुसार वृक्षारोपण – हमारी भारतीय संस्कृति में वृक्षों को देवतुल्य माना गया है अतः वृक्षों को नक्षत्रों के अनुसार आरोपित करने का विधान भी पुराणों में वर्णित है–

देवतारामवाप्यादिप्रतिष्ठोदङ्मुखे रवौ।। [11]

अर्थात् देवता, बगीचा एवं बाबली इत्यादि की प्रतिष्ठा सूर्य के उत्तरायण होने पर करनी चाहिए।

अग्नि पुराण में ही ''वृक्षायुर्वेद–कथन'' नामक 282वें अध्याय के अन्तर्गत नक्षत्रों के आधार पर वृक्षारोपण किये जाने के उपदेश निहित है–

ध्रुवाणि पंचवायव्यं हस्तं प्राजेशवैष्णवम्।

नक्षत्राणि तथामूलं शस्यन्ते द्रुमरोपणे।। [12]

वृक्षों का आरोपण ध्रुव (तीनों उत्तरा, रोहिणी, रेवती), अभिजित् (मुहूर्त विशेष), हस्त, पूर्वाषाढ़ा, शतभिषा और मूल

नक्षत्रों में करना चाहिए।

वृक्ष प्रकृति के श्रृंगार होते हैं। पाकड़, बरगद (क्षीरवृक्ष), पीपल, घर के समीप कांटेदार वृक्ष तथा उद्यान मांगलिक एवं प्राण वायु प्रदाता हैं। अश्वत्थ वृक्ष विष्णु का स्वरूप है, यह भी क्षीर वृक्ष के समान प्रशस्त और औषधीय गुणों से युक्त व गुणकारी है। वृक्षारोपण हेतु उत्तरा, स्वाति, हस्त आदि नक्षत्रों का होना भी पुराणों में शुभ माना गया है। इनमें देवत्व का निवास होता है। इसके अतिरिक्त विप्र और चन्द्रमा की आराधना के पश्चात् भी वृक्षों के आरोपण का विधान है। पुराणों में अनेक विधियों के माध्यम से वृक्षों के आरोपण का विधान देखने को मिलता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराणों में पंचभूतों एवं याज्ञिक पदार्थों की दैवीय रूपरेखा उनके मानवीय उपयोग के कारण ऋषियों द्वारा मानी गई है। पुराणकालीन समाज में न केवल पर्यावरण के समस्त विषयों पर सजगता थी अपितु उसके संरक्षण को भी महत्व दिया जाता था।

वन संरक्षण में ऋषियों की भूमिका –

वन पर्यावरण की शुद्धता के एकमात्र साधन हैं। इस शुद्धता को बनाये रखने में प्राचीन ऋषियों की महती भूमिका स्तुत्य है।

एक बार दुर्भाग्य से जीवों को दुख देने वाली महाभयानक सौ वर्ष पर्यन्त अनावृष्टि हुई, इस अनावृष्टि के फलस्वरूप उस समय सम्पूर्ण वृक्षों के पत्ते तथा फल सूख गये। नित्यकर्म करने के लिए कहीं पर भी नाम मात्र जल दृष्टिगोचर नहीं होता था। आर्द्रता का कहीं नाम–निशान नहीं था, दशों–दिशाओं में रूक्ष एवं खर पवन बहने लगा, जिससे पृथ्वी पर चारों ओर महान हाहाकार होने लगा, पशु–पक्षी गर्मी एवं प्यास से आतप हुए मृत्यु की गोद में जाने लगे। सम्पूर्ण परिवेश भयावह प्रतीत होने लगा किन्तु उस समय महर्षि अत्रि समाधि में संलग्न, निर्विकार शिवस्वरूप परम ज्योति का ध्यान कर रहे थे। अत्रि की तपस्या की अपेक्षा अनुसूया द्वारा मन, वाणी एवं कर्म द्वारा किया गया शिवसेवन विशिष्ट था। आचरण से परम–पुनीत, पतिव्रता अत्रि पत्नी अनुसूया की शिव में इस प्रकार की परम भक्ति को देख सम्पूर्ण दानव एवं दैत्य उसके समीप आने का साहस न कर दूर ही खड़े रहते थे, जिस प्रकार अग्नि के भय से व्याकुल होकर सब दूर हो जाते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि पूर्वकाल में ऋषियों ने घोर तप किया था किन्तु ऐसा घोर तप किसी ने सम्पूर्ण पृथ्वी पर भी नहीं किया था। उनकी घोर तपस्या को देख सम्पूर्ण देवता, ऋषि, गंगा आदि नदियों ने उनके दर्शन हेतु उस पवित्र वन में प्रवेश किया। उनकी तपस्या की प्रशंसा कर सभी अपने यथेष्ठ स्थान को चले गये परन्तु गंगा एवं सदाशिव उस स्थान से नहीं गये। पवित्र गंगा ने तपस्विनी अनुसूया से कहा – हे देवी! मैं तुम्हारे पति की सेवा, स्वामी सदाशिव में भक्ति एवं धर्माचरण को देखकर यहीं तुम्हारे सान्निध्य में स्थित हूँ। मैं तुम्हारी शिवाराधना से प्रसन्न हूँ अतः तुम जो चाहती हो, प्रसन्नतापूर्वक वह सब आग्रह कीजिए। तब अनुसूया ने सबकी मंगल कामना करते हुए जीवन जीने हेतु जल की याचना की। गंगा ने अनुसूया से धरती में एक गड्डा तैयार करने को कहा, ज्योंहि अनुसूया ने गड्डा खोदा कि क्षणमात्र में गंगा उस गर्त में प्रविष्ट हो गई। तपस्विनी अनुसूया ने महाभक्ति से युक्त हो नमस्कार करते हुए शिव एवं गंगा की स्तुति की। तत्पश्चात् लोक–कल्याण करने वाली अनुसूया भगवान शंकर की अर्चना कर बोलीं कि आप अगर हमारी स्तुति से अतिप्रसन्न हैं तो आप दोनों ही इस तपोवन में निवास कर लोक का कल्याण करें। इस प्रकार जगदम्बा गंगा एवं शिव अत्रि महर्षि के निवास स्थान पर स्थित हो गये। इस प्रकार महर्षि अत्रि एवं देवी अनुसूया के तप से वह सम्पूर्ण वन प्रदेश अपनी प्रथमावस्था और व्रीहि से परिपूर्ण हो गया, जिससे यज्ञ–यागादि करने वाले वहाँ के लोगों एवं ऋषियों ने वृष्टि की कामना से होम किया। इस प्रकार लोकमंगल की भावना के इस पवित्र कर्म से सन्तुष्ट होकर मेघों ने वर्षा की, जिससे सम्पूर्ण संसार आनन्दमय हो गया। सम्पूर्ण वन प्रान्त अपने प्राकृतिक सौन्दर्य से जगमगा उठा, इस प्रकार

वनों के संरक्षण में ऋषियों का योगदान अकथनीय है।[13]

गौतमोऽपि स्वयं तत्र वरूणार्थे तपः शुभम्।
चकार चैव षण्मासं प्राणायामपरायणः।। [14]

अर्थात् महर्षि गौतम ने भी वन संरक्षण हेतु कठिन तप किया था, इसका प्रमाण उपर्युक्त वर्णन में दृष्टिगोचर होता है। दक्षिण दिशा में एक पर्वत था, वह पर्वत अपनी स्वर्णीय कान्ति से अतिसुशोभित हो रहा था। सभी ऋषिमुनि एवं वन्य–पशु–पक्षी भी उसके सौन्दर्य से अविभूत हो उसकी शरण में चले गये परन्तु दुर्भाग्यवश उस पर्वत पर सौ वर्ष तक घोर अनावृष्टि हुई, जिसके कारण सभी लोग एवं प्राणीसमुदाय संकट में पड़ गया, पृथ्वी तल पर एक भी पत्ता हरा नहीं दिखाई पड़ता था। फिर क्या ? उस घोर अनावृष्टि के प्रकोप से दुखित होकर वहाँ के निवासी, मुनि, मनुष्य, पशु–पक्षी और मृग उस स्थान का परित्याग कर दशों–दिशाओं में चले गये। इस प्रकार घोर अनावृष्टि को देखकर कुछ ऋषि तथा ब्राह्मण प्राणायाम में तत्पर होकर और कुछ ध्यान में तत्पर होकर कठिन काल को बिताने लगे। महर्षि गौतम स्वयं भी वरूण देवताओं को प्रसन्न करने के लिए प्रणायाम परायण होकर छः मास तक कठिन तप में संलग्न रहे। उनके इस घोर तप से प्रसन्न हुए वरूण देव उन्हें वर देने के लिए पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए और कहा– हे वत्स! मैं तुम्हारी कठोर तपस्या से अति प्रसन्न हूँ, अतः इच्छानुसार वर माँगने का कष्ट करें। प्रत्युत्तर में महर्षि गौतम ने लोककल्याण की कामना से वृष्टि करने की प्रार्थना की। तब देव वरूण ने ऋषि गौतम को धरती में गड्डा खोदने का आदेश दिया, वरूण के आदेश से ऋषि गौतम ने धरती में एक हाथ का गड्डा खोदा, फिर वरूण ने उस गड्डे को दिव्य जल से परिपूर्ण कर दिया। तब वरूण ने कहा– हे महामुने! परोपकारी! महर्षि गौतम! यह जल अक्षय एवं तीर्थ रूप होगा और पृथ्वी पर तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध होगा। इस स्थान पर दिये गये दान, होम, तप, देवार्चन तथा पितृश्राद्ध सभी अक्षय होगें। इस प्रकार महर्षि गौतम की स्तुति से सन्तुष्ट वरूणदेव अन्तर्ध्यान हो गये और महर्षि गौतम भी दूसरों का उपकार कर परमानन्द को प्राप्त हुए। तत्पश्चात् मुनीश्वर ने ब्रीहि, यव, नीवार आदि अनेक प्रकार के धान्यों को हवन करने के निमित्त पृथ्वी में रोपित किया। जिससे नाना प्रकार के धान्य, अनेक प्रकार के वृक्ष, भिन्न–2 प्रकार के पुष्प एवं वनस्पतियाँ आदि अनेक वस्तुएँ उत्पन्न हो गईं। यह सुन वहाँ पर अनेक ऋषि, पशु–पक्षी आदि अनेक जीव दर्शनार्थ आने लगे। सारी पृथ्वी में वही वन पुष्पित एवं फलित होने से सुन्दर प्रतीत होने लगा। जल के अक्षय होने के कारण वहाँ दुख देने वाली अनावृष्टि का भी योग नहीं रहा। उस वन में आकर महर्षिगण उत्तम यज्ञ–यागादि कार्यों का सम्पादन करने लगे। तब उन्होंने भी जीवन बिताने के निमित्त धान्यादि बीजों को उस वन प्रदेश में बोया। इस प्रकार महर्षि गौतम के प्रभाव से सारा तपोवन आनन्दमय हो गया।

धान्यानि वापयामासुः कालक्रमणहेतवे
आनन्दस्तद्वने ह्यासीत् प्रभावाद्गौतमस्य च।। [15]

इसी सन्दर्भ में अग्नि पुराण में वर्णन है कि वाजपेय यज्ञ करने के इच्छुक एक मुनि द्वारा ब्रह्मयूप की प्रदक्षिणा तथा उसके ऊपर जल का सिंचन किया जा रहा है। मुनि अपने हाथ में जल से भरा हुआ घड़ा और कुश लेकर आम्र वृक्ष की जड़ में पानी डाल रहे हैं, इससे आम्रवृक्ष भी सींचे जा रहे हैं और पितर भी तृप्त हो रहे हैं अतः यह प्रसिद्ध है कि यह कर्म पुण्य फलों को देने वाला हुआ करता है–

एको मुनिः कुम्भकुशाग्रहस्त आम्रस्य मूले सलिलं ददाति।
अम्राश्च सिक्ताः पितरश्च तृप्ता एका क्रिया द्वयर्थकरीप्रसिद्धा। [16]

मत्स्यपुराण में वृक्षों के संरक्षण में ब्राह्मणों के कर्त्तव्यों का भी विशेष विश्लेषण वर्णित है। पुराणों के अनुसार वृक्षों में

विविध उपद्रवों एवं उत्पातों के दिखाई पड़ने पर उनके संरक्षण हेतु ब्राह्मणों को वृक्षों को ऊपर से ढककर सुगन्धित द्रव्यों तथा पुष्प एवं मालाओं से विभूषित करना चाहिए और पाप की शान्ति के लिए वृक्षों के ऊपर छाता लगाना चाहिए। तत्पश्चात् ब्राह्मणों को शिव की उपासना करनी चाहिए एवं पशु को ''रूद्रेभ्यः'' इस संकल्प से निवेदित कर, वृक्षों के नीचे हवन कर शिव का जाप करना चाहिए। उस पाप की अत्यन्त शान्ति के लिए मधु तथा घृत से युक्त पायस से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट कर पृथ्वी का दान देना चाहिए–

आच्छादयित्वा तं वृक्षं गन्धमाल्यैर्विभूषयेत्।

वृक्षोपरि तथा छत्रं कुर्यात्पापप्रशान्तये।।

***व्याख्याता**
सामान्य संस्कृत,
राजकीय आचार्य संस्कृत, महाविद्यालय
भरतपुर, (राज.)

संदर्भ ग्रंथ –

1. म. पु. 59/18
2. म. पु. 159/592
3. अ. पु. 363/11
4. अ. पु. 363/14, 23
5. अ. पु. 68/4, 5
6. अ. पु. 80/3, 4
7. म. पु. 59/6
8. अ. पु. 70/1–9
9. म. पु. 104/10
10. म. पु. 111/10
11. अ. पु. 121/54
12. अ. पु. 282/3–4
13. शि. पु. को. रू. सं. 4/1–61
14. शि. पु. को. रू. सं. 24/8
15. शि. पु. को. रू. सं. 24/2–33
16. अ. पु. 115/40